

वैज्ञानिक शोध की प्राचीन भारतीय परम्परा

- प्रो० कृष्ण बिहारी पाण्डेय

प्रत्येक सूत्रात्मक अभिव्यक्तियाँ अपने अर्थ के लिए भाष्य की अपेक्षा रखती हैं। मौखिक ज्ञान परंपरा और किसी विषय का उच्च ज्ञान धरातल पर सूत्रात्मक हो जाता है। दार्शनिक निष्पत्तियों में विचारों का अमूर्तन सदैव सूत्रात्मक होगा। गणित इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। भारतीय वाङ्मय का अधिकांश भाग सूत्रात्मक और दार्शनिक है। औपनिवेशिक काल में इसके भाष्य को मिथकीय मानते हुए भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रति हीन भावना उत्पन्न कर ज्ञानात्मक विकास अर्थात् शोध की भारतीय धारा को विच्छिन्न कर दिया गया। प्रस्तुत आलेख इसी चिन्ताओं की फलश्रुति है।

विषय संकेत:- प्राचीन शोध, प्राचीन भारतीय विज्ञान

विज्ञान शब्द का उच्चारण सुनते ही श्रोता के मस्तिष्क में फ्रांसिस बेकन, रेने-देकार्त, गैलीलियो, कोपरनिकस तथा न्यूटन जैसी विभूतियों के चित्र उभरते हैं, क्योंकि अधिकांश लोगों के मन में ऐसा भ्रम बना हुआ है कि इन्हीं महापुरुषों ने विज्ञान के इतिहास की आधारशिला रखी। जब कि भारत में इनसे बहुत पहले कपिल, कणाद, सुश्रुत, चरक तथा भास्कराचार्य जैसे अनेक महान वैज्ञानिक हो गये हैं। किन्तु इस सत्य पर सहस्राधिक वर्षों से योजनापूर्वक आवरण डालने का षडयन्त्र रचा गया है। सत्य अन्ततः मिथ्यावरण को चीर कर प्रकट हो जाता है। अतः भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परम्परा को दर्शाने वाले ये श्लोक अब सहज ही सर्वत्र स्थापित हो चुके हैं-

वैज्ञानिकाश्च कपिलः कणादः सुश्रुतस्तथा।

चरको भास्कराचार्यो वराहमिहिरः सुधीः॥

नागार्जुनो भरद्वाजः आर्यभट्टो वसुर्बुधः।

ध्येयो व्यंकटरामश्च विज्ञा रामानुजादयः॥

महाभारत के संजय की दिव्य-दृष्टि की व्याख्या भले ही वर्तमान दूरदर्शन या क्लोज-सक्रिट टी0 वी0 के रूप में करने का प्रयास किया जाये, किन्तु सत्य यह है कि आज का विज्ञान अभी दिव्य-दृष्टि तक नहीं पहुँच सका है। इसी प्रकार हमारे आग्नेयास्त्र तथा ब्रह्मास्त्र को आज का ऐटॉमिक आयुध अथवा मिसाइल भले ही मान लिया जाये किन्तु मन्त्राभिसिंचित शर-संधान का कोई स्वरूप दूर-दूर तक आज के विज्ञान के पास नहीं है। हमारे प्राचीन ऋषियों का विज्ञान बाह्य उपकरण की बैसाखी पर नहीं टिका था, अपितु उसमें मानव की अन्तर्निहित अपार शक्ति के प्राकट्य की क्षमता थी, जिसे आध्यात्मिक विज्ञान कहते हैं।

भौतिक विज्ञान में शोध का माध्यम इन्द्रियाँ हैं। इनके द्वारा मनुष्य देखकर, चखकर, सूँघकर, स्पर्शकर, तथा सुनकर ज्ञान प्राप्त करता है। विभिन्न वैज्ञानिक उपकरण इन इन्द्रियों की शक्ति को बढ़ाते हैं। जब कि आध्यात्मिक विज्ञान का माध्यम अन्तर्ज्ञान है, जिसमें शरीर प्रयोगशाला बनता है और समस्त विचारों, भावनाओं और इच्छाओं का स्पन्दन समाप्त होने पर सत्य अपने को उद्घाटित करता है। पश्चिम का वैज्ञानिक अभी भौतिक विज्ञान में ही अटका पड़ा है, जो आध्यात्मिक विज्ञान की स्थूल अभिव्यक्ति मात्र है। हाँ, नैराश्य के क्षणों में वह आध्यात्मिक विज्ञान के अस्तित्व को स्वीकार अवश्य करता है, और बोल पड़ता है - "Adhyatam begins,

where Science ends.” भारतीय मनीषा को इस परम सत्य का दर्शन प्रारम्भिक काल में ही हो गया था, जो ईशावास्योपनिषद् के प्रथम पंक्ति में इस प्रकार वर्णित है-

“ईशावास्यमिदम् सर्वम् यत्किञ्च जगत्यां जगत्।”

ऋषियों ने इसका प्रत्यक्ष साक्षात्कार साधना के द्वारा देश, काल और निमित्त की परिधि से परे जाकर किया था। कालान्तर में यह सत्य ज्ञान विज्ञान सम्बन्धी उनके समस्त चिंतन का केन्द्र बिन्दु बना और इस अनुभूति में से एकात्मक दृष्टि विकसित हुई, जो व्यक्ति समाज व प्रकृति का टुकड़ों में नहीं अपितु समग्रता में विचार करती है। उन्होंने अनुभव किया कि हम जो कुछ भी करते हैं उससे सम्पूर्ण परिवेश प्रभावित होता है। इस प्रकार भारत में यहाँ समाज, पर्यावरण एवं प्रकृति से सुसंगत विकास की अवधारणा विकसित हुई। इसे यदि हम प्रौद्योगिकी कहें तो हमारी अपनी प्रौद्योगिकी का आधार ईशावास्योपनिषद् के इसी मंत्र की दूसरी पंक्ति में वर्णित मिलता है-

“तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥”

इसी वैदिक आदेश के अनुपालन में आयुर्वेदज्ञ वैद्य इलाज के लिए वनस्पति तोड़ने से पूर्व प्रार्थना करता है - “आप में जीवन है, परन्तु किसी मान के जीवन की रक्षा हेतु आप की आवश्यकता है, इसलिये तोड़ रहा हूँ।” और उतना ही तोड़ता है जितनी आवश्यकता होती है। समस्त वनौषधि का संग्रह कर विश्व बाजार पर एकाधिकार करने का प्रयास नहीं करता और न ही पेटेन्ट कराता है। लंका का राज-वैद्य सुषेण संजीवनी का भण्डारण लंका राज्य में नहीं कराता अपितु द्रोणाचल पर्वत पर ही उसके संवर्धन की व्यवस्था रखता है, ताकि जीवनत्राण हेतु प्रत्येक प्राणी को आवश्यकता पड़ने पर यह औषधि रहे।

हमारी इस प्राचीन ज्ञान-विज्ञान की परम्परा को नष्ट करने का एक निर्मम प्रयास मध्यकाल में बर्बर धर्मान्ध आक्रान्ताओं द्वारा हुआ, जिन्होंने भीषण नर-संहार के साथ-साथ विश्वविद्यालयों तथा पुस्तकालयों को अग्नि के हवाले किया। इतिहास साक्षी है कि नालन्दा विश्वविद्यालय का पुस्तकालय छः मास तक निरन्तर धूँ-धूँ कर जलता रहा। और दूसरा प्रयास ब्रिटिश शासनकाल में हुआ, जिसमें हमारी गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली को समाप्त कर हम पर मैकाले की शिक्षा पद्धति लादी गई, हमें असत्य इतिहास पढ़ाकर हमारे मन में अपने राष्ट्र, अपने अतीत और अपने पूर्वजों के प्रति हीन भावना उपजाई गई। इस प्रयास में हमारे ही कुछ बुद्धिजीवियों को धन तथा पद का लालच देकर शामिल किया गया। अपने ही देश के कतिपय बौद्धिक संस्थानों तथा प्रचार माध्यमों ने भारतीय इतिहास को ग्लानि एवं आत्मनिंदा की दृष्टि से देखने का कुत्सित प्रयास किया। दुर्भाग्यवश स्वतंत्रता प्राप्ति के छः दशक बीत जाने पर भी स्थिति में कोई आशाजनक परिवर्तन नहीं हुआ। परिणामस्वरूप हमारे युवा वैज्ञानिक को किसी भी विषय में शोध हेतु पहला कदम अमेरिका द्वारा प्रकाशित Abstracts की ओर बढ़ाना पड़ता है। मैं Chemical Sciences में शोध के लिये Chemical Abstracts, Physical Sciences के लिए Physical Abstracts, Mathematical Sciences के लिए Mathematical Abstracts, Biological Sciences के लिए Biological Abstracts, तथा Medical Sciences के लिए Medical Abstracts पर निर्भरता उसकी विवशता है। इन Abstracts में वर्णित विषय वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना कतई अनुचित नहीं है। किन्तु इस धारणा का निर्माण किया जाना सर्वथा अनुचित है कि किसी भी विषय में विश्व में जो भी ज्ञान उपलब्ध है वह इन्हीं Abstracts में है; यही ज्ञान के आदि स्रोत हैं। जबकि यह सर्वथा असत्य है। सत्य यह है कि ज्ञान के आदि स्रोत वेद हैं। वेदों में वर्णित ज्ञान का मंथन करके हमारे ऋषियों ने शिक्षा, व्याकरण, छन्दस्, निरुक्त, ज्योतिष, कल्प, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र तथा पुराण आदि की रचना की है। विशेषकर वैज्ञानिक दृष्टि भारत में अध्ययन एवं अनुसंधान की परम्परा अति प्राचीन है। भृगु, वशिष्ठ, भरद्वाज, अत्रि, शौनक, शुक्र, नारद, चाक्रायण, धुंड़ीनाथ, नंदीश, कश्यप, अगस्त्य, परशुराम, द्रोण, दीर्घतमस आदि ऋषियों ने विमान विद्या, नक्षत्र विज्ञान, रसायन विज्ञान, अस्त्र-शस्त्र विज्ञान, तथा जलयान विज्ञान जैसे जीवन के अनेक क्षेत्रों में वैज्ञानिक शोध किया है। भृगु-संहिता के प्रारम्भ में ही ऐसे दस शास्त्रों का उल्लेख है - कृषि शास्त्र, जल शास्त्र, खनिज शास्त्र, नौका शास्त्र, रथ शास्त्र, अग्नियान शास्त्र, वेश्म शास्त्र, प्राकार शास्त्र, नगर रचना तथा यन्त्र शास्त्र।

नानाविधानां वस्तूनां यंत्राणां कल्पसंपदा
धातूनां साधनानां च वास्तूनां शिल्पसंज्ञितम्।
कृषिर्जलं खनिश्चेति धातुखण्डं त्रिधाभिधम्॥
नौका-रथाग्नियानानाम्, कृतिसाधनमुच्यते।
वेश्म, प्राकार, नगररचना वास्तु संज्ञितम्॥

दुर्भाग्य से पश्चिम का अध्यानुकरण करने के लिए साधन जुटाने हेतु हमने जितना श्रम एवं धन व्यय किया उसका लक्षांश भी अपनी इस प्राचीन ज्ञान संपदा के अध्ययन, विश्लेषण तथा प्रयोग के लिये नहीं किया। परिणामस्वरूप हमारे पूर्वजों ने सहस्रों वर्षों की सारस्वत साधना से जो ज्ञान हमारे लिये अर्जित किया था वह यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है और हमारा युवा वैज्ञानिक चाहकर भी उस ज्ञान तक पहुँच पाने में असमर्थ है। एक ओर जहाँ हमने स्वयं अपनी अपार ज्ञान संपदा का समुचित आदर नहीं किया, वहीं दूसरी ओर पश्चिमी राष्ट्रों के वैज्ञानिकों ने उस ज्ञान-राशि के महत्त्व को माना और संस्कृत विद्वानों की सहायता से परिश्रमपूर्वक उसका अध्ययन किया तथा उसका उपयोग करके नये वैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं तकनीकों का अविष्कार किया और विज्ञान जगत में समान अर्जित किया। यह सिलसिला निरन्तर जारी है। 1973 में नासा (अमेरिका) के वैज्ञानिकों ने एक भारतीय सहयोगी की सहायता से महर्षि भरद्वाज का विमानशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ “यन्त्र सर्वस्व” प्राप्त किया और उसमें वर्णित सिद्धान्तों तथा तकनीकों का उपयोग अपने अन्तरिक्ष शोध के लिए किया। इस सिलसिले में नवीनतम उदाहरण Electromagnetic बल तथा Radioactivity का एकीकरण सिद्धान्त है, जो वैदिक सूत्र “सर्वम् खलु इदम् ब्रह्म” का आंशिक प्रतिपादन है तथा जिसके लिए 1974 में वेनबर्ग, अब्दुल सलाम तथा ग्लोशो को नोबेल पुरस्कार मिल चुका है। इसी सिद्धान्त को प्रायोगिक रूप से सिद्ध करने के लिए कार्लो रुबिया को भी 1976 का नोबेल पुरस्कार मिला है बाद में आये “ग्राण्ड यूनीफिकेशन सिद्धान्त” में तीन बलों (Electromagnetic, Nuclear & Radioactivity) का एकीकरण सिद्ध हो चुका है तथा हाल ही में आई “सुपर स्ट्रिंग थ्योरी” में चौथे बल अर्थात् गुरुत्वकर्षण का भी एकीकरण प्रतिपादित हो चुका है। यह सिद्धान्त “सर्वम् खलु इदम् ब्रह्म” का पूर्ण निरूपण है। इस सिद्धान्त के लिए महर्षि महेश योगी के शिष्य अमेरिका के भौतिक विज्ञानी डॉ० जान हेगलिन नोबेल पुरस्कार के समीप पहुँच गये, बताए जाते हैं।

संस्कृत भारती, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित पुस्तक Science in Sanskrit में लगभग पांच लाख संस्कृत ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ तस्करों द्वारा अमेरिका तथा यूरोप के वैज्ञानिकों के हाथों तक पहुँचाये जाने का उल्लेख है। इन प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में वर्णित अनेक वैज्ञानिक तथ्यों को कालान्तर में पश्चिम के वैज्ञानिकों ने अपना बताकर प्रस्तुत किया है। जैसे-जैसे हमारे संयुक्त ग्रन्थों का वैज्ञानिक अनुशीलन किया जा रहा है, ऐसे अनेक प्रकरण प्रकाश में आते जा रहे हैं। प्रस्तुत लेख के कलेवर की मर्यादा को दृष्टिगत रखते हुए यहाँ मात्र पाँच ऐसे उदाहरणों का संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है।

१. बौधायन का शुल्ब-सूत्र- ज्यामिति में जिस प्रमेय को पाइथागोरस प्रमेय के नाम से जाना जाता है, उसे पाइथागोरस से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व बौधायन ने शुल्ब सूत्र के रूप में निम्न प्रकार से प्रतिपादित किया है (बौधायन शुल्ब सूत्र 1/48) - “दीर्घचतुरसस्याक्षण्या रज्जुः पाश्वर्यानी तिर्यक्मानी च यत्पृथग्भूते कुरुतस्तदुभयं करोति।” अर्थात् किसी आयत की भुजाओं के वर्गों का योग उसके कर्ण के वर्ग के बराबर होता है।

पाइथागोरस प्रमेय वास्तव में बौधायन शुल्ब सूत्र ही है। इस बात का उल्लेख एक पाश्चात्य भारत-शास्त्री Leopold Van Schroeder ने भी अपनी पुस्तक में किया है। वे लिखते हैं - “The Pythagoras theorem has its origin in the Sulb Sutras of Baudhayan and Apastamb.”

२. ऋषि अगस्त्य का विद्युत-सेल- रासायनिक अभिक्रिया द्वारा विद्युत उत्पादन हेतु विद्युत सेल तथा बैटरी के निर्माण का श्रेय इटली के दो वैज्ञानिकों लुईगी गैलवानी (Luigi Galvani) तथा आलेसान्द्रो वोल्ता (Alessandro Volta) को दिया जाता है, जिनका कार्यकाल अठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। किन्तु इनसे साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व चौदहवीं शताब्दी में ही ऋषि अगस्त्य ने अपनी अगस्त्य संहिता में रासायनिक अभिक्रिया से विद्युत उत्पन्न करने के लिये विद्युत सेल का वर्णन इस प्रकार किया है -

“संस्थाप्य मृण्मये पात्रे ताम्रपत्रं सुसंस्कृतम्।

छादयेच्छिखिग्रीवन चार्द्राभिः काष्ठपांसुभिः॥

दस्तालोष्टो निधातव्यः पारदाच्छादिदस्तः।

संयोगाज्जायते तेजो मित्रावरुणसंज्ञितम्॥”

अर्थात् “मिट्टी के पात्र में अच्छी तरह से साफ की हुई ताम्र-पट्टिका रख कर उसके ऊपर कॉपर सल्फेट डालो। उसके ऊपर गीला लकड़ी का बुरादा रख कर ऊपर से Zn-Hg अमलगम रखो। ताम्र तथा जिंक को तारों से जोड़ने पर विद्युत उत्पन्न होगी।” इतालवी वैज्ञानिकों के विद्युत सेल तथा ऋषि अगस्त्य के विद्युत सेल आश्चर्यजनक रूप से अगस्त्य संहिता को तस्करों द्वारा विदेश पहुँचाये जाने का प्रकरण प्रकाश में आ चुका है।

3. निश्चित संख्या की वस्तुओं का समुच्चय (nC_r) गणितज्ञ महावीर आचार्य ने 850AD में n वस्तुओं में से r वस्तुओं का समुच्चय बनाने हेतु निम्न गणितीय सूत्र दिया जो उनकी पुस्तक गणित-सार-संग्रहः के अध्याय 6 का सूत्र 218 है -

एकाद्योकोत्तरतः पदमूर्ध्वधर्यतेः क्रमोत्क्रमशः।

स्थाप्य प्रतिलोमघ्नं प्रतिलोमघ्नेन भाजितं सारम्॥

इस सूत्र के अनुसार समुच्चय की संख्या होती है -

$${}^nC_r = \frac{(n-1)(n-2)(n-3) \dots (n-r+1)}{1 \times 2 \times 3 \times 4 \times \dots \times r}$$

लगभग 800 वर्षों बाद 1634 AD में पश्चिमी गणितज्ञ हेरीगोन (Herigone) ने ठीक यही सूत्र अपने नाम से स्थापित किया।

४. नक्षत्रों का दीर्घवृत्तीय पथ (The Elliptical Path of Planets)-

ऋग्वेद संहिता (600BC) में नक्षत्रों के दीर्घवृत्तीय पथ का वर्णन इस प्रकार किया गया है (ऋग्वेद 1, 164, 2) -

त्रिनाभिचक्रमजरमनर्व यत्रेमा विश्वा भुवनानि तस्थुः।

अर्थात् “जिस दीर्घ वृत्तीय पथ पर समस्त खगोलीय पिण्ड (celestial bodies) गति करते हैं वह अजार (imperishable) है तथा अनर्व (unslackened) है”

जर्मन वैज्ञानिक जे० केप्लर (Johannes Kepler) ने 1609AD में नक्षत्रीय गति के लिये दीर्घवृत्तीय पथ का उल्लेख किया और विज्ञान जगत् में इसके लिये ख्याति पाई। निश्चय ही तब तक वेद जर्मनी में पहुँच चुके थे और वेदों के रहस्य को जानने का प्रयास जर्मनों द्वारा मैक्समूलर से काफी पहले ही प्रारम्भ हो चुका था।

५. हृदय एवं रक्त संचार- शरीर में रक्त संचार के ज्ञान का श्रेय अंग्रेज शरीर-विज्ञानी विलियम हार्वे (William Harvey) को दिया जाता है, जिन्होंने सन् 1628AD में हृदय गति एवं रक्त संचार विषयक अपनी पुस्तक प्रकाशित की। जबकि न उनसे दो हजार वर्ष से भी अधिक पहले सुश्रुत रचित सुश्रुत संहिता (600BC) के अध्याय 14 में इस वैज्ञानिक तथ्य का स्पष्ट वर्णन है -

“आहारस्य सम्यक् परिणतस्य यस्तेजो भूतसारः परमसूक्ष्मः स रसः इत्युच्यते।

तस्य हृदयं स्थानं स हृदयात् चतुर्दिशिर्धमनीरनुप्रवीश्य कृत्स्नयं शरीरमहरहः तर्पयति वर्धयति धारयति यापयति च अद्रष्टहेतुकेन कर्मणा॥”

अर्थात् “सुपचित आहार से जो ऊर्जा शरीर को प्राप्त होती है उसे रस कहते हैं। उसका स्थान हृदय है, पहाँ से चौबीस धमनियों (दस लृध्वगामी, दस अधोगामी तथा चार क्षैतिज) में प्रवेश करते हुए यह सम्पूर्ण शरीर का दिनानुदिन तर्पण, वर्धन धारण तथा यापन करता है।”

सुश्रुत तथा चरक ने न केवल रक्त संचार का वर्णन किया है बल्कि रक्त के माध्यम से शरीर के विभिन्न अंगों का पोषण होने का उल्लेख भी किया है।

इस लेख में वर्णित कुछ उदाहरणों के माध्यम से अपने युवा वैज्ञानिकों से हमारा आग्रह है कि वे विज्ञान के जिस क्षेत्र को भी शोध अपनाने के लिए चुनें, प्रयास पूर्वक यह जानकारी हासिल करें कि वैज्ञानिक शोध की प्राचीन भारतीय परंपरा में क्षेत्र में शोध की दिशा क्या रही है और हमारे पूर्वज उस क्षेत्र में कितना ज्ञान अर्जित कर चुके हैं। अपने प्रचीन मनीषियों का अनुसरण करके हम वह वैज्ञानिक दृष्टि प्राप्त करें जिससे विज्ञान का विकास प्रकृति के सुसंगत हो, पर्यावरण का क्षति पहुँचाने वाला न हो तथा सम्पूर्ण सृष्टि के लिये कल्याणकारी हो। ऐटमी आयुध, ओजोन क्षण तथा ग्लोबल वार्मिंग से त्रस्त विश्व हमसे यही अपेक्षा कर रहा है।

विश्व शक्ति होने का दम्भ पालने वाले उन राष्ट्रों के वैज्ञानिकों का अनुसरण करने से हम बचें जिन्होंने निरंकुश होकर प्राकृतिक संसाधनों का दोहन किया है तथा विश्व को विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। हाल ही में दोहा में हुये पृथ्वी सम्मेलन में ऐसे राष्ट्रों के अध्ययन पर्यावरण संरक्षण के मुद्दे पर विश्व-समुदाय के समक्ष खड़े होने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे। हम तो अपने वैज्ञानिक शोध में भी अपने समक्ष सर्वदा अपने पूर्वजों का यही ध्येय - वाक्य रखें -

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्॥

ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः॥

इण्डियन केमिकल सोसाइटी के अध्यक्ष के रूप में लेखक का प्रथम व्याख्यान बाबासाहेब अम्बेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद में आयोजित 43वें केमिस्ट्स कान्फ्रेंस में 24 दिसम्बर 2006 को हुआ था। इस व्याख्यान पर आधारित लेख “वैज्ञानिक शोध की दिशा और लक्ष्य : भारत के सन्दर्भ में” विज्ञान परिषद् प्रयाग की मासिक पत्रिका “विज्ञान” के फरवरी 2007 के अंक में प्रकाशित हो चुका है। इसी क्रम में द्वितीय व्याख्यान महात्मा गाँधी इन्स्टीट्यूट ऑफ ऐप्लाइड साइंसेज, जयपुर में आयोजित 44वें केमिस्ट्स कान्फ्रेंस में को हुआ। प्रस्तुत लेख इसी व्याख्यान पर आधारित है।

संदर्भ:-

1. सोनी, सुरेश, ‘भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परंपरा’, अर्चना प्रकाशन, भोपाल, 2003
2. Soni, Suresh, 'Pride of India', Samskrit Bharati, New Delhi, 2006
3. Soni, Suresh, 'Science in Sanskrit', Samskrit Bharati, New Delhi, 2007
4. सोनी, सुरेश, ‘प्राचीन भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी’, विज्ञान भारती, मुंबई, 2002
5. जगद्गुरु स्वामी श्री भारतीय कृष्णतीर्थ जी, ‘वैदिक गणित’ मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1996
6. जगद्गुरु स्वामी श्री भारतीय कृष्णतीर्थ जी, ‘वैदिक गणित’ निर्देशिका, विद्याभारती, कुरुक्षेत्र, 2000
7. श्रीवास्तव, उर्मिला, वेदविज्ञान श्री: (वैदिक वाङ्मय में विज्ञान), आर्यकन्या डिग्री कालेज, इलाहाबाद, 2002